Indian J. Soc. & Pol. 11 (01): 121-124 : 2024 **ISSN : 2348-0084 (PRINT)**
(July-December 2023), 29 February 2024 **ISSN: 2455-2127(ONLINE)**

भारतीय संघवाद का बदलता हुआ स्वरूप चुनौतियां और संभावनाएं

ऊषा देवी वर्मा[1]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वी0एम0एल0जी0 कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

ABSTRACT

भारतीय संविधान ने देश में ऐसी राजनीतिक प्रणाली की व्यवस्था की है जिसका स्वरूप संघीय है, जिसमें सरकार के दो स्तर हैं – राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर। इसके साथ ही भारतीय संविधान में संघीय सरकार को राज्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया गया है जिससे भारत की राष्ट्रीय एकता व विविधता को बनाए रखा जा सकें। कोविड–19 जैसी वैश्विक महामारी से निपटने के लिए भारत में की गयी कार्यवाही से देश के संघीय ढांचे में बदलाव आया है। महामारी ने परम्परागत रूप से राज्यों के दायरे में समझे जाने वाले कई क्षेत्रों में केन्द्र सरकार को दूरगामी सुधार लागू करने का अधिकार दे दिया, साथ ही कोविड–19 संकट के प्रबन्धन के लिए जमीनी स्तर पर राज्य सरकारों की भूमिका भी बढ़ी। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में संघवाद के स्तम्भ राज्य की स्वायत्तता, केन्द्रीकरण, क्षेत्रीयकरण आदि के बीच उचित संतुलन की आवश्यकता है। 'अत्यधिक राजनीतिक केन्द्रीकरण' या 'अराजक राजनीतिक विकेन्द्रीकरण' दोनों ही भारतीय संघवाद को कमजोर बनाते हैं। भारत सरकार का लक्ष्य देश को वित्तीय वर्ष 2024–25 तक 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनाना है, परन्तु यह तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक देश में केन्द्र और राज्य साथ मिलकर कार्य नहीं करेंगे। विशेषज्ञों का मानना है कि देश में 'सहकारी संघवाद' का यह सबसे उपयुक्त समय है, क्योंकि वर्तमान में जो राजनीतिक दल केन्द्र में है उसकी सरकार देश के लगभग दो तिहाई राज्यों में है। अतः स्पष्ट है कि देश में संघवाद के समक्ष मौजूदा चुनौतियों को जल्द से जल्द दूर किया जाए, ताकि देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में राज्यों की अधिक भूमिका को सुनिश्चित किया जा सके।

KEYWORDS: *संघवाद, केन्द्रीकरण, स्वायत्तता, राष्ट्रीय एकता, लोकतान्त्रिक व्यवस्था, सांस्कृतिक विविधता*

भारतीय संविधान में अनेक संवैधानिक मान्यताओं व परम्पराओं का जन्म संक्रमणकाल में हुआ, जब भारत उपनिवेश से लोकतंत्र बनने के बीच का मार्ग तय कर रहा था। भारतीय संविधान का वर्तमान स्वरूप दशकों की अनवरत विकास प्रक्रिया का परिणाम है। राष्ट्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्वतंत्रता संग्राम व इससे जुड़े आदर्श एक नवजात–प्रजातंत्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियां इस विकास प्रक्रिया के नियामक तत्व हैं, जिन्होंने संविधान निर्माण की दशा व दिशा का निर्धारण किया। जिस समय संविधान सभा द्वारा भारतीय संविधान की रूपरेखा का निर्धारण किया जा रहा था वह भारत के विभाजन का काल था। भारत के विभाजन ने संवैधानिक व राजनैतिक परिदृश्य में भी अनेक परिवर्तन हुआ। स्वायत्तता, साम्प्रदायिक व्यवस्था जैसे शब्द के अर्थ पूर्व के समान नहीं रहे। ऐसे में शक्तियों के केन्द्रीकरण पर आधारित व्यवस्था को अपनाया जाना स्थिति को विस्फोटक बना सकता था। इस सन्दर्भ में रेखांकित करने योग्य तथ्य यह है कि भारतीय संविधान वैचाारिक आधार पर विकेन्द्रीकरण व लोकतांत्रिक मान्यताओं के अनुरूप हो। अतः तत्कालीन परिस्थितियों व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया जाना ही बेहतर विकल्प था। एक अन्य कारक जिससे संघात्मक व्यवस्था को अपनाने सम्बन्धी तर्क को मजबूती दी वह था देशी रियासतें। इन देशी रियासतों द्वारा अपनी स्वायत्तता बनाये रखने पर बल, भारतीय शासन व्यवस्था में उनकी स्थिति आदि कुछ ऐसे कारण थे, जिन्होंने संघात्मक व्यवस्था को अपरिहार्य बना दिया, क्योंकि संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत ही इकाईयाँ किसी विषय पर अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकती हैं तथा अपने हितों का संरक्षण व सम्वर्द्धन कर सकती हैं। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की गत्यात्मकता व सजीवता को बनाये रखने के लिए मात्र संस्थात्मक व प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं की स्थापना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इन संस्थाओं और प्रक्रियाओं में पर्यावरण के माध्यम से निरन्तर पुनर्निवेशन व सहभागिता ही व्यवस्था के विकास का मापदण्ड है।

'संघ' शब्द आंग्ल भाषा के 'फेडरेशन' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। फेडरेशन शब्द लैटिन भाषा के 'फोडस' शब्द से बना है। 'फोडस' से अभिप्राय है सन्धि या समझौता। जब दो या दो से अधिक राज्य एक सन्धि अथवा समझौते के द्वारा मिलकर एक नये राज्य का निर्माण करते हैं तो वह 'राज्य संघ' राज्य के नाम से जाना जाता है। अमरीका, आस्ट्रेलिया और स्विजरलैण्ड के संघों का विकास इसी प्रकार से हुआ हैं। 'संघात्मक शासन' उस शासन प्रणाली को कहते हैं जिसमें राज्य शाक्ति संविधान द्वारा केन्द्र तथा संघ की घटक इकाइयों के बीच विभाजित रहती है। संघात्मक राज्य में दो प्रकार की सरकारें होती है–केन्द्रीय सरकार और राज्यीय अथवा प्रान्तीय सरकारें। दोनों सरकारें सीधे संविधान से ही शक्तियां प्राप्त करती हैं। दोनों अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रहती हैं। भारतीय संविधान ने देश में ऐसी राजनीतिक प्रणाली की व्यवस्था की है जिसका स्वरूप संघीय है, जिसमें सरकार के दो स्तर हैं–राष्ट्रीय स्तर और राज्य स्तर। इसके साथ ही भारतीय संविधान में संघीय सरकार को राज्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संघवाद में सशक्त केन्द्र को वरीयता देने का महत्वपूर्ण कारण भारत की राष्ट्रीय एकता व विविधता को बनाए रखना है, क्योंकि भारतीय समाज में सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधता के साथ–साथ भाषायी विभिन्नता पाई जाती है जहां अनेक जाति, धर्म

1: Corresponding Author

एवं भाषा को मानने वाले लोग निवास करते हैं। इस सांस्कृतिक विविधता को सुरक्षित करने के लिए संघीय शासन को अपनाया गया है जिसमें प्रत्येक क्षेत्र की सांस्कृतिक स्वायत्तता को बनाए रखा जाए तथा प्रशासनिक एकता का निर्माण किया जाए। इस सबके बावजूद भी भारतीय संघ में सहयोगी संघवाद की प्रवृत्तियां ज्यादा दिखाई देती हैं। संघीय व्यवस्था का व्यावहारिक रूप इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता कि समाज में लिखित संविधान अथवा सामान्य कानून क्या हैं? अपितु देश में पनप रहे उन अनेक सामाजिक तथा आर्थिक कारकों पर होता है जो राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार भारतीय संघवाद का स्वरूप न तो पूर्णतः संघात्मक रहा है न पूर्णतः एकात्मक। मोरिस जोंस के शब्दों में 'इसका सामान्य स्वरूप सौदेबाजी का रहा है'। प्रत्येक राज्य पहले अपनी क्षमता के अनुसार केन्द्र से सौदेबाजी करता है तथा जब सौदे की स्थिति चरम पर पहुंच जाती है तो वह केन्द्र से सहयोग करने लग जाता है। जहां संविधान में बल संघ एवं राज्यों की शक्तियों के सीमांकन पर है, व्यवहार में दोनों के बीच सहकारी सौदेबाजी ही होती है। फलस्वरूप राज्यों की केन्द्राभिमुखता बढ़ती चली गयी जो 1975 में आन्तरिक उद्घोषणा के साथ केन्द्र के एकाधिकार में रूपान्तरित हो गयी। आपातकाल के दौरान संविधान संशोधन के जरिये उच्चतम न्यायालय की 'न्यायिक पुनरावलोकन' की शक्ति को परिसीमित कर दिया गया। परिणामस्वरूप राज्यों की स्वायत्तता पर केन्द्र का स्वेच्छाचारी हस्तक्षेप बढ़ता चला गया जिससे राज्यों के पास केन्द्र के सम्मुख बिना शर्त समर्पण के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा। राजनीति में क्षेत्रीय दलों का व्यापक प्रभाव स्थापित हुआ तथा केन्द्र सरकार को राजनीतिक मजबूरियों के चलते क्षेत्रीय दल केन्द्रीय राजनीति के समर्थक बने लेकिन विवशता की राजनीति ने दोनों को विकेन्द्रीकरण एवं स्वायत्तता के प्रति संवेदनशील बना दिया है। दूसरी ओर क्षेत्रीय दलों ने भी अपने समर्थन की केन्द्र सरकार से भरपूर कीमत वसूल की। इसी क्रम में वे अपने राज्य में प्रतिद्वन्दी क्षेत्रीय दल को परास्त करने के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव डालने से भी नहीं चूके कि वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया जाये। बिहार, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु में इस तरह की मांग समय–समय पर उठती रही है। यह निश्चिय ही संघवाद के लिए हानिकारक था, किन्तु 1994 में बोम्मई केस में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद स्थितियां संघवाद के लिए काफी अनुकूल हो गयी थी।

सन् 1990 में भारत की राजनीति में काफी बदलाव दिखाई दिया जिसने एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली विकसित की जो ज्यादा संघीय थी। संघीय गठबंधन में सहभागिता और निर्णयों का नया तरीका विकसित हुआ, जिसे क्रमशः संसदीय प्रणाली और संविधान को औपचारिक तौर पर अंगीकार करना बाकी था। संघीय गठबंधन के माध्यम से राज्य आधारित दलों की शक्ति और प्रभाव राष्ट्रीय नीतियां तैयार करने लिए 'केन्द्र–राज्य संबंधो' की आवश्यकता महसूस की गई। एक राज्य और कई राज्य आधारित पार्टियों नें राजनीतिक प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीय नीति के निर्धारण में बढ़ी हुई भुमिका निभायी, जो उन्होंने 'सहभागी संघ' की औपचारिक संस्थाओं के माध्यम से हासिल नहीं किया था। परिणामस्वरूप संघीय गठबंधन ने उन्हें सहभागी अवसर मुहैया करा दिए, जो उन्हें पूर्व में हासिल थे। इस बदलाव के पीछे दो प्रमुख कारक रहें हैं। पहला वैश्वीकरण ने राजनीति में नये आयाम जुड़े। साथ ही आर्थिक सुधारों ने राज्यों को नयी भूमिका और उत्तरदायित्व से जोड़ा। दूसरा दलीय प्रणाली के संघवाद ने, जो एक नये आयाम के रूप में उभरा था, एक प्रतिस्पर्धी तर्क के साथ खुद को स्थापित किया, जिसे एक क्रान्तिकारी विकास माना जा सकता है। राज्य आधारित दलों के राष्ट्रीय समंजन के द्वारा स्थानीय आंकाक्षाओं की स्थापना कई चर्चाओं के बाद सामने आया, जो इस विवाद का केन्द्र बिन्दु है। बहुस्तरीय संबन्धों से उभरी एक जटिल सत्ता साझेंदारी इस पूरी प्रणाली को एक साथ बनाये रखने में महत्वपूर्ण कारक है। एक दूसरे बड़े विचार की ओर देखें जो उस काल में, स्थानीय स्वशासन में सत्ता का केन्द्रीकरण। यह संविधान के 73वें संशोधन के रूप में विधायी आकार ले पाया और जिससे संघीय ढांचे के तीसरे स्तर को संवैधानिक मान्यता मिली। संघवादी प्रणाली के विशेषज्ञ प्रो0एम.पी. सिंह 1990 के बाद की भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में बढ़ते संघीयकरण की प्रवत्ति को प्रधानमंत्री, राज्यपाल, निर्वाचन आयोग के साथ–साथ वित्तीय संघवाद में बढ़ रही राज्यों की हिस्सेदारी के गाहे–बगाहे काफी महत्वपूर्ण मानते हैं।

कोविड–19 जैसी वैश्विक महामारी से निपटने के लिए भारत में की गयी कार्यवाही से देश के संघीय ढांचे में बदलाव आया है। महामारी ने परम्परागत रूप से राज्यों के दायरे में समझे जाने वाले कई क्षेत्रों में केन्द्र सरकार को दूरगामी सुधार लागू करने का अधिकार दे दिया, साथ ही कोविड–19 संकट के प्रबन्धन के लिए जमीनी स्तर पर राज्य सरकारों की भूमिका भी बढ़ी। प्रारम्भिक चुनौतियों के बाद संघ सरकार ने राज्यों को महामारी के प्रकोप से निपटने और सामाजिक सुरक्षा के उपाय लागू करने, उनकी स्वास्थ्य सुविधाओं को सुदृढ़ करने और स्थानीय स्तर के लॉक–डाउन का प्रबंधन करने के लिए पर्याप्त संभावना छोड़ी और स्वायत्तता भी दी। चूंकि 'स्वास्थ्य' राज्य का विषय है और राज्यों ने अधिकांश मामलों में सरकार के साथ अपने राजनीतिक समीकरणों का ध्यान रखे बिना अपने क्षेत्राधिकार में स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने के साथ–साथ मुख्य एजेन्ट और प्रशासन के रूप में भी कार्य किया।

संघवाद में संसाधनों के विकेन्द्रीकरण के साथ लगातार केन्द्र और राज्यों के बीच सन्तुलन बनाये रखना होता है, साथ ही कमजोर कड़ी पर ध्यान देते हुए सभी को मजबूती प्रदान करना, स्वास्थ्य, स्वच्छता रैकिंग आदि के रूप में राज्यों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पैदा करना है। इसका मुख्य उद्देश्य एक साझी संस्कृति तथा आपसी विश्वास जैसे नैतिक मूल्यों को विकसित करना तथा लोगों के बीच सहयोग की भावना को बढ़ाने के साथ–साथ राष्ट्र की एकता, विविधता को स्वीकारना भी है। वर्तमान महामारी ने हमें इस सम्बन्ध में कई सबक सिखाये। सभी सीमाओं और संसाधनों की परिणति वायरस के साथ सामूहिक संघर्ष से हुई है। केन्द्र और राज्यों के बीच जितना निर्बाध सामंजस्य होगा, जितनी रचनात्मक सहमति से वे दोनों एक दूसरे के सहयोगी और प्रतिपूरक होंगे उतना ही वे साथ–साथ इस संकट से गुजरते हुए उसका मजबूती से सामना करने में सक्षम होंगे। सामान्यतः राज्य सरकारों को ऐसा लग सकता है कि केन्द्र उनके अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहा है।

जबकि केन्द्र को व्यापक दृष्टिकोण अपनाना होता है ताकि राज्यों के पृथक रवैये के बावजूद अधिकतर नागरिकों को लाभ पहुंचाया जा सके। संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्यों के लिए जरूरी है कि वे अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग करते हुए संसद द्वारा बनाये कानूनों और उस राज्य पर लागू होने वाले मौजूदा कानूनों पर अमल करना सुनिश्चित करें। अगर राज्य सरकार ऐसा करने में असफल रहती हे तो संघ अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग कर राज्यों को निर्देश दे सकता है।

भारतीय संघवाद के समक्ष चुनौतियाँ

भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के बाद हम नयी शदी में इसके सामने आ रही चुनौतियों की ओर रूख करते है। जैसा कि हालिया अध्ययन इशारा करते है,क्या सत्ता का विकेन्द्रीकरण केन्द्र से राज्य, जिले और पंचायत स्तर पर हो रहा है? इन दावों के पक्ष में जो साक्ष्य सामने आये हैं। उनके अनुसार क्षेत्रीयता और जातीय आधारित दलों का उभार हुआ है। सांस्कृतिक असहिष्णुता के उभार ने संघीय लोकतंत्र के बहुसांस्कृतिक ताने बाने के सामने खतरा पैदा कर दिया है–

पहचान आधारित मुद्दा– यह मुद्दा दूसरे राज्य पुर्नगठन आयोग की मांग के रूप में सामने आया और साथ ही स्वशासन की मांग के आधार पर संघीय प्रणाली की सीमाओं पर पुनर्विचार के रूप में भी। तेलंगाना राज्य का निर्माण हो चुका है, लेकिन विदर्भ के साथ–साथ उत्तर प्रदेश सहित अन्य राज्यों के पुर्नगठन का मुद्दा अभी भी जीवित है।

संसाधन संबन्धी तनाव– जल संसाधन, दीर्घावधि से लम्बित अन्तर्राज्यीय नदी जल विवाद (कावेरी, नर्मदा) और बराबरी के फॉर्मूले के तहत गैर –बराबरी से जूझ रहे राज्यों के लिए क्षतिपूर्ति का मसला। वस्तु एवं सेवा कर ने भी राज्यों की अधिकांश स्वायत्तता को कम दिया है। जी0एस0टी0 व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों को प्राप्त मुआवजे की गारंटी का महामारी काल में केन्द्र सरकार द्वारा बार–बार उल्लंघन किया गया। राज्यों को उनके बकाया का भुगतान करने में देरी से आर्थिक मंदी का प्रभाव और सघन हो गया।

इनके साथ–साथ अन्य मांगों में बृहत्तर स्वायत्तता और अपने नियन्त्रण वाले संसाधनों पर स्वाशासन प्रमुख है। चुनौतियां अब राज्यों की उन नये तरीके से सहभागिता और सहुलियत की है,ताकि उन्हें राष्ट्रीय नीतियों के कार्यान्वयन के तहत प्रमुंख क्षेत्र जैसे– बिजली, सड़क और बुनियादी नागरिक सुविधाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में भागीदार बनाया जा सके।

पिछले कुछ वर्षों में सम्बन्धित राज्यों को सन्दर्भित किये और उनका परामर्श लिए बिना केन्द्र सरकार ने कई महत्वपूर्ण एवं राजनीतिक रूप से संवेदनशील निर्णय लिये जो संघ और राज्यों के बीच सहकारी भावना को बनाये रखने में बाधा उत्पन्न किया है जैसे–अनुच्छेद 370 को जम्मू कश्मीर के राज्य विधानमण्डल से किसी परामर्श के बिना ही हटाना, नई शिक्षा नीति 2020 को लागू करना, असम, पश्चिम बंगाल और पंजाब से परामर्श के बिना ही उनके यहां बीएसएफ के अधिकार क्षेत्र में बढ़ोत्तरी करना, राज्यों को कोविड–19 प्रबन्धन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं जैसे परीक्षण किटों की खरीद, टीकाकरण, आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 के उपयोग और अनियोजित राष्ट्रीय लॉकडाउन में बेहद सीमित भूमिका सौंपना। इतना ही नहीं, कोविड की दूसरी लहर के दौरान अपूर्ण तैयारी के कारण आलोचना की शिकार हुई केन्द्र सरकार ने स्वास्थ्य को 'राज्य सूची का विषय' बताते हुए विफलता का दोष राज्यों पर थोपने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त योजना आयोग का समाप्त कर दिया गया, पिछले सात वर्षों में अन्तर्राज्य परिषद की केवल एक बार बैठक हुई है और राष्ट्रीय विकास परिषद की कोई बैठक ही नहीं हुई।

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में संघवाद के स्तम्भ राज्य की स्वायत्तता, केन्द्रीकरण, क्षेत्रीयकरण आदि के बीच उचित संतुलन की आवश्यकता है। अत्यधिक राजनीतिक केन्द्रीकरण या अराजक राजनीतिक विकेन्द्रीकरण दोनों ही भारतीय संघवाद को कमजोर बनाते हैं। अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध को मजबूत करने के लिए राज्य सरकारों को विशेष रूप से संघवाद के दृष्टिकोण पर ध्यान केन्द्रित करते हुए मानव संसाधनों की तैयारी पर विचार करना चाहिए जो केन्द्र द्वारा प्रस्तुत परामर्श प्रक्रियाओं में जवाब तैयार करने में उनका समर्थन कर सके। केवल संकट के समय एक दूसरे तक पहुंचने के बजाय मुख्यमंत्रियों को इस मुद्दे पर नियमित संलग्नता के लिए एक मंच का निर्माण करना चाहिए। विवादस्पद नीतिगत मुद्दों पर केन्द्र और राज्यों के बीच राजनीतिक सद्भावना विकसित करने के लिए अन्तर्राज्य परिषद के संस्थागत तंत्र का उचित उपयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए। एक ओर जहां सहभागी और प्रतिस्पर्धी संघवाद आजकल राजनीतिक विमर्श के प्रमुख शब्द बन गये हैं वहीं यह भी याद रखना जरूरी है कि भारतीय संघवाद राज्यों और जिलों में निवास करता है। जब तक इन स्तरों पर बदलाव परिलक्षित नहीं होगा तब भारतीय लोकतंत्र के सुदृढीकरण का काम अधूरा रहेगा। संघीय लोकतंत्र में लोकतांत्रिक विकास का तर्क कई प्रयोगों का हिमायती है, बशर्ते वे संविधान के बुनियादी मूल्य और इसके प्रति सम्मान रखें।

एक विविधतापूर्ण देश के रूप में संघवाद को संतुलित करते हुए सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और अत्यधिक राजनीतिक केन्द्रीकरण या विकेन्द्रीकरण से हर स्तर पर बचना चाहिए इसके साथ ही साथ न केवल संकट के समय बल्कि सामान्य परिस्थिति में भी अंतर राज्य संबंधों को मजबूत करने की आवश्यकता है । भारत सरकार का लक्ष्य देश को वित्तीय वर्ष 2024–25 तक 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था बनाना है, परन्तु यह तब तक सम्भव नहीं होगा, जब तक देश में केन्द्र और राज्य साथ मिलकर कार्य नहीं करेंगे। कई बार केन्द्र और राज्य दोनों के मध्य सुगम न बन पाने का एक प्रमुख कारण राजनीतिक मतभेद भी होता है, परन्तु विशेषज्ञों का मानना है कि देश में सहकारी संघवाद का यह सबसे उपयुक्त समय है, क्योंकि वर्तमान में जो राजनीतिक दल केन्द्र में है उसकी सरकार देश के लगभग दो तिहाई राज्यों में है। अतः स्पष्ट है कि देश में संघवाद के समक्ष मौजूदा चुनौतियों को जल्द से जल्द दूर किया जाए, ताकि देश के आर्थिक और

सामाजिक विकास में राज्यों की अधिक भूमिका को सुनिश्चित किया जा सके।

REFERENCES

सईद,पी.एम.(2021) *भारतीय राजनीति व्यवस्था,* भारत बुक ट्रस्ट

वसु, दुर्गादास (2005) *भारत का संविधान, एक परिचय,* नई दिल्ली, वाधवा एण्ड कम्पनी

लक्ष्मीकान्त, एम. (2020) *भारत की राज्यव्यवस्था,* मैग्राहिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड (छठवां संस्करण)

कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया

नारंग, डॉ.ए.एस.,*भारतीय लोकतन्त्र की समस्याएं एवं चुनौतियां*

व्हीयर, के.सी. (1964), *फेडरल गवर्नमेंट,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी

जोन्स,मोरिस (1971) *द गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स आफ इण्डिया,* हचिसन